तुगलकी आर्थिक नीतियां ?

प्रभात कुमार रॉय

जिस तथ्य की चर्चा अभी कुछ माह पूर्व दबी जबान से राजसत्ता के गलियारों में की जाती थी कि मंदी के दौर से भारत भी बच नहीं सकेगा ,वो तथ्य नग्न रुप में अब खुलकर राष्ट्र के समक्ष आ गया। जिस डीजीपी (आर्थिक विकास दर) की बढोत्तरी का मनमोहना हुकूमत बहुत डंका बजाती रही कि वह ग्यारह फीसदी तक पंहुचेगी, वो तो लुढक कर महज सात फीसदी तक आ गई और आगामी वर्ष में इसके और अधिक गिरने की संभावना व्यक्त की जाने लगी। राष्ट्र के औद्योगिक उत्पादन में पिछले दो वर्ष की सबसे बड़ी गिरावट दर्ज की गई और इसे भारतीय अर्थव्यवस्था में मंदी के आग़ाज के तौर पर निरुपित किया गया। भारतीय रुपया डालर के मुकाबले में खस्ताहाल हो चला और शेयर बाजार में आ रही निरंतर गिरावट को इसके तात्कालिक असर के तौर पर देखा गया। यक़ीनन मुद्रास्फीति रोकने के लिए मनमोहना हुकूमत द्वारा जो मौद्रिक नीतियां आजमाई गई , वे महज तुग़लकी साबित हुई। मार्च, 2010 के बाद ब्याज दरों में जो तेरह बार इजाफा किया ,उसका भी नकारात्मक असर सामने आ गया। उद्योग जगत पहले से ही इसके नकारात्मक प्रभाव की आशंका जताते हुए ब्याज दरों की बढ़ोतरी का विरोध करता रहा। लेकिन सरकार के नीति-नियंताओं द्वारा उद्योग जगत की अनदेखी की गई। मुख्यत :औद्योगिक उत्पादन सूचकांक में जो 5.1 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है, वह खनन व विनिर्माण क्षेत्र में है, लेकिन अन्य इलाकों के हालात भी कमोबेश बेहतर नहीं हैं। भारत के वित्तमंत्री फरमाते हैं कि इस गिरावट पर दुनिया के बिगड़ते आर्थिक माहौल का असर है। लेकिन इसकी बुनियाद में बढ़ती महंगाई रोकने के लिए जो मौद्रिक उपाय किए गए उनका भी कितना अहम किरदार रहा ? मंहगाई रोकने के लिए बिचौलियों और जमाखोरों पर हुकूमत ने कोई कानूनी प्रहार नहीं किया और वायदा कारोबार पर रोक आयद नहीं की गई। बिचौलियों और जमाखोरों को काबू करने के लिए खुदरा व्यापार में एफडीआई का खतरनाक प्रस्ताव लाया गया जो औधे मुँह गिरा।

सरकारी इक़दामात के चलते महंगाई तो काबू में नहीं आई, इसके विपरीत उद्योग जगत पर संकट के बादल छा गए। आखिर ऐसा क्यों हुआ कि विगत वर्ष 2010 अक्तूबर में जो औद्योगिक विकास की दर 11.3 फीसदी थी, वह इस साल 5.1 फीसदी नकारात्मक दर्ज की गई ? स्पष्ट

तथ्य है कि केंद्र सरकार की आर्थिक नीति उद्योग जगत के अनुकूल साबित नहीं हुई। उस पर विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के प्रभावों ने हालात को विषम बनाने में सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया। निरंतर बिगड़ते हुए आर्थिक हालात के लिए वस्तुतः मनमोहना हुकूमत की तुगलकी आर्थिक नीतियां को जिम्मेदार करार दिया जाना चाहिए, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद के असल अलंबरदार 75 करोड़ किसानों की आपराधिक उपेक्षा अंजाम दी। भारतीय गणतंत्र की असली आत्मा देश के गांवों और किसानों में निहित ही रही। आजादी के दौर के 64 सालों के औद्यौगीकरण के बावजूद किसान अक़सरियत में विद्यमान हैं।आर्थिक नीतियों के ग्लोबलाइजेशन ने विगत 21 वर्षो में देश के किसानों की कमर ही तोड़ डाली। जो देश खाद्यान्न के क्षेत्र में वर्षो से आत्मनिर्भर रहा, वह अब खाद्य सामग्री आयात करने के लिए मोहताज हो चला। सरकार के ही आंकड़े बताते हैं कि देश के लगभग बीस करोड़ नागरिकों को भरपेट भोजन तक नसीब नहीं रहा। देश के आर्थिक नीति नियंताओं की प्राथमिकता में कहीं भी किसान और गाँव-देहात कतई नहीं रहे। विगत दो दशकों से उनकी तव्वज़ों का मरक़ज बन चुका है, केवल कारपोरेट सैक्टर। देश के नीति नियंताओं की स्पष्ट सोच रही है कि कारपोरेट सैक्टर तरक्की करेगा तो स्वतः ही उसकी तरक्की टपक कर गरीब भारतवासियों को निहाल कर जाएगी और उनकी गुरबत और बदहाली खुदबखुद मिट जाएगी।

महात्मा गाँधी अंत्योदय अर्थात अंतिम व्यक्ति के उत्थान की कामना करते थे। उनका सिर्फ नाम लेने वाले राजनेता देश में कॉरपोरेट सैक्टर का संपूर्ण वर्चस्व स्थापित करने पर आमादा रहे। कृषि विकास दर को बढाने की कोशिश तक नहीं की गई। विगत कुछ वर्षो में कृषि विकास दर तेजी के साथ गिरकर मात्रा दो प्रतिशत तक जा पंहुची। योजना आयोग के पास और देश के वित्तमंत्री महोदय के पास कृषि विकास के लिए धन ही कहाँ बचा है ? शासक वर्ग द्वारा खेतीबाड़ी को अलाभकारी बनाने की यह बहुत ही सोची समझी साजिश की गई, ताकि किसान अपनी आर्थिक बदहाली से तंग आकर खुद ही अपनी धरती को कारपोरेट सैक्टर को औने पौने दामों में बेच डाले और शहरी मजदूर बन जाएं। बहुत तेजी के साथ औद्योगिकरण करने का यह अत्यंत कारगर कारपोरेट तरीका रहा है, जिसे लातिन अमेरिकी देशों में बखूबी आजमाया गया और भारत में भी उसका बाक़ायदा परीक्षण चल रहा है। इससे कथित तरक्की बहुत तेजी के साथ होती है, किंतु केवल कारपोरेट सैक्टर पर काबिज कुछ लाख लोगों की। बाकी करोड़ों को तो गुरबत और बेरोजगारी की निर्मम चक्की में पिसना पड़ता है।

देश की असली तरक्की तो सदैव ही आम नागरिकों की तरक्की से संलग्न रहेगी, जिसमें किसानों की तादाद ही सबसे अधिक हैं। खाद्यान्न वस्तुओं की मंहगाई को लेकर हाहाकार मच रहा है।

किंतु खाद्यान्न वस्तुओं की मंहगाई का संपूर्ण फायदा तो कुछ तिजोरियों में ही जा रहा है। अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की नीतियों का अर्थव्यवस्था की ज़मीनी हक़ीक़त से सरोकार हुआ होता तो भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान चुनौतियों और संकटों से जूझना अधिक कठिन नहीं होता, यदि हुकूमत ने भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ के खंभों को भरभरा कर गिरने के लिए खुला नहीं छोड़ दिया होता। कृषि और लघु उद्योग पर ही भारतीय अर्थव्यवस्था वस्तुतः खड़ी रही। कृषि के पश्चात राष्ट्र को सबसे अधिक रोजगार फराहम करने वाले लघु उद्योगों की घनघोर उपेक्षा अंजाम दी गई। रोजमर्रा की घरेलू इस्तेमाल की वस्तुओं का उत्पादन भी कॉरपोरेट सैक्टर में करने की आर्थिक नीति का निर्धारण किया गया, फलस्वरुप लघु उघोगों का पूरा विनाश हो गया। विगत एक दशक के दौरान हुकूमत के आँकड़ो के अनुसार ही देशभर में तक़रीबन 10 लाख छोटे उद्योगों की इकाइयां निरंतर घाटे के कारण बंद हो गई।

भारतीय अर्थव्यवस्था को खोखला करने और गंभीर संकट में डालने के लिए घट-घट व्यापी भयावह भ्रष्ट्राचार ने भी जबरदस्त क़िरदार अदा किया। राष्ट्र के मेहनतकशों के अथक परिश्रम से सृजित संपदा को भ्रष्ट्राचारियों बेरहमी से लूट कर काली दौलत के रुप में विदेशी बैंकों में भर दिया गया और कथित देशभक्त हुकूमतें महज तमाशबीन बनी रही। भारतीय खुफिया ऐजेंसियों के आँकड़ो पर यकीन करें तो अमीर भारतीयों की 50 लाख करोड़ की काली दौलत विदेशी बैंकों में जमा है। वतन का दुर्भाग्य देखिए कि काली दौलत पर हुई संसदीय बहस में हुकूमत ने इस दुष्कर सवाल पर किसी तरह की संजीदगी का परिचय पेश नहीं किया। इस नाजुक वक्त में अपार-अकूत काली दौलत को देश में वापस लाने का जर्मनी तरह प्रयास किया जाए को यह अकूत दौलत राष्ट्र निर्माण में निवेश पाकर आर्थिक चमत्कार को अंजाम दे सकती है और आर्थिक मंदी के संकट को तिरोहित कर सकती है।

(पूर्व प्रशासनिक अधिकारी)